# इन्सान की आर्थिक समस्या और उसका इस्लामी हल

मौलाना सैयद अबुल आलामोदूदी



# इन्सान की आर्थिक समस्या और उसका इस्लामी हल

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी

अनुवाद
मुहम्मद अहमद




मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
नई दिल्ली - 110025

Insaan Ki Aarthik Samasya Aur Uska Islami Hal (Hindi
हिन्दी प्रकाशन न० - 110


नाम मूल किताब : इंसान का मआशी मसला और उनका इस्लामी हल (उर्दू

प्रकाशक : मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली - 110025
दूरभाष : 26911652, 26914341
फैक्स : 26317858, 26820975
E-mail: mmipub@nda.vsnl.net.in
Website : www.mmipublishers.net

संस्करण : मई 2003 ई० 1000

मूल्य : 8.00

# विषय सूची

ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान है

# इन्सान की आर्थिक समस्या और उसका इस्लामी हल

वर्तमान समय में विभिन्न देशों और राष्ट्रों तथा सामूहिक रूप से पूरी दुनिया की आर्थिक समस्याओं को जो महत्व दिया जा रहा है, शायद इससे पहले इन समस्याओं को कम से कम स्पष्ट रूप से इतना महत्व कभी नहीं दिया गया। 'स्पष्ट रूप से' शब्द का मैं इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूँ कि वास्तव में मानव के जीवन में उसकी जीविका जितना महत्व रखती है, उसकी दृष्टि से हर ज़माने में व्यक्तियों, गरोहों, देशों, राष्ट्रों और सारे मनुष्यों ने बहरहाल इस ओर ध्यान दिया है। लेकिन आज इस ध्यान को जिस चीज़ ने स्पष्ट रूप दे दिया है वह अर्थशास्त्र के नाम से एक सुव्यवस्थित शास्त्र की बड़ी-बड़ी किताबों, भारी-भरकम परिभाषाओं और शानदार संस्थाओं का मौजूद होना तथा जीवन सामग्री का उत्पादन, उनका जुटाना एवं उपार्जन के तरीक़ों का जटिल से जटिल होते चले जाना है। इन कारणों से आज आर्थिक समस्याओं पर बहस और वार्तालाप और वैज्ञानिक शोध का इतना ज़ोरशोर है कि इनके आगे मानव जीवन की सारी समस्याएं दबकर रह गयी हैं। लेकिन यह अजीब बात है कि जिस चीज़ पर विश्वभर का ध्यान इस तरह केन्द्रित हो गया है, वह सुलझने और साफ़ होने के बजाय और अधिक उलझती तथा पहेली बनती चली जाती है। अर्थशास्त्र की मोटी-मोटी परिभाषाओं ने और

अर्थशास्त्रियों ने बाल की खाल निकालने जैसे वैज्ञानिक अमल ने आम लोगों को इतना भयभीत कर दिया है कि वे बेचारे इन उच्च श्रेणी की शास्त्रीय बहसों को सुनकर इस तरह अपने आर्थिक मसले की विकरालता से आतंकित होकर और उसके हल की सभी संभावनाओं से निराश हो जाते हैं, जिस तरह एक बीमार किसी डाक्टर की ज़ुबान से अपनी बीमारी का कोई मोटा सा लातीनी नाम सुनकर डर जाता है और सोचता है कि जब मुझे ऐसी बड़ी बीमारी हो गयी है तो मेरी जान का अब ईश्वर ही रक्षक है। हालांकि इन परिभाषाओं और शास्त्रीय बहसों का पर्दा हटाकर सीधे-साधे स्वाभाविक तरीक़े से देखा जाय तो मनुष्यों की आर्थिक समस्या बड़ी आसानी से समझ में आ सकती है और इस मसले के हल के विभिन्न उपाय जो संसार में अपनाये गये हैं, उनके लाभकारी तथा हानिकारक पहलू भी बिना किसी कठिनाई के देखे जा सकते हैं और उसके समाधान की सही और स्वाभाविक सूरत जो कुछ हो सकती है, उसके समझने में भी कोई कठिनाई बाक़ी नहीं रहती।

परिभाषाओं के चक्कर और शास्त्रीय जटिलताओं के मायाजाल ने इस मसले को जिस तरह उलझाया है, उस पर तदधिक उलझन इस वजह से पैदा हो गयी है कि इंसान की आर्थिक समस्याओं को, जो दरअसल मानवीय जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं का एक हिस्सा था, सम्पूर्ण से अलग करके एक स्वतंत्र और स्थाई मसले के रूप में देखा जाने लगा और धीरे धीरे यह लय इतनी बढ़ी कि आर्थिक समस्या को पूरे जीवन की समस्या समझ ली गयी। यह पहली ग़लती से भी ज़्यादा बड़ी ग़लती है, जिसके कारण गुत्थी को सुलझाना असंभव हो गया है। इसकी मिसाल बिलकुल ऐसी ही है जैसे कोई जिगर के रोगों का विशेषज्ञ मानव शरीर की सम्पूर्ण व्यवस्था से अलग करके और इस व्यवस्था में जिगर की जो हैसियत है, उसे नज़रअंदाज़ करके

जिगर को बस जिगर ही की हैसियत से देखना शुरू कर दे। और फिर उसे देखने में इतना डूब जाय कि अन्ततः उसे पूरा मानव शरीर बस एक जिगर ही जिगर नज़र आने लगे। आप खुद समझ सकते हैं कि अगर मानव स्वास्थ्य की सारी समस्याओं को जिगर से ही हल करने की कोशिश की जाय तो इन समस्याओं का हल होना कितना असंभव हो जायेगा और आदमी बेचारे की जान कितना ज़्यादा ख़तरे में पड़ जायेगी। बस इसी पर विचार करके आप समझ सकते हैं कि जब आर्थिक समस्या को मानव की सम्पूर्ण समस्याओं से निकालकर अलग कर लिया जाय और फिर इसी को सुनिश्चित मानवता निर्धारित करके ज़िन्दगी की सारी समस्याएं इसी से हल की जाने लगें तो सिवाय हैरानी के और क्या हासिल होगा।

आधुनिक युग के फ़ित्नों में से इन विशेषज्ञों का फ़ित्ना भी एक बड़ा फ़ित्ना है। जीवन और इसकी समस्याओं पर सामूहिक दृष्टि कम से कम होती चली जाती है। मानव विभिन्न शास्त्रों के एकपक्षीय विशेषज्ञों के हाथों में खिलौना बनकर रह गया है। कोई भौतिक विज्ञान का विशेषज्ञ है तो वह सारी सृष्टि की पहेली सिर्फ़ भौतिक शास्त्र की अपनी विशेषज्ञता के बल पर ही हल करने लगता है। किसी के दिमाग़ पर मनोविज्ञान छाया हुआ है तो वह अपने मनोवैज्ञानिक अनुभवों और निरीक्षणों पर भरोसा करके पूरा जीवन दर्शन निर्धारित करना चाहता है। किसी व्यक्ति की नज़र यौन सम्बन्धी विषयों पर जमकर रह गयी है तो वह कहता है कि पूरी ज़िन्दगी बस कामेच्छा (सेक्स) की धुरी पर घूम रही है। यहां तक कि ईश्वर का ख़्याल भी मनुष्य के दिमाग़ में इसी रास्ते से आया है। इसी तरह जो लोग आर्थिक समस्याओं में डूबे हुए हैं वे लोगों को यक़ीन दिलाना चाहते हैं कि आर्थिक समस्या ही तेरे जीवन की मूलभूत समस्या है और बाक़ी सारी समस्याएं इसी जड़ की शाखाएं हैं।

हालांकि वस्तुस्थिति जो कुछ है वह यह है कि ये सब एक कुल के विभिन्न पहलू हैं। इस कुल के अन्दर इन सबका एक विशिष्ट स्थान है और इस स्थान के लिहाज़ से ही उनका महत्व भी है। इंसान एक जिस्म रखता है जो भौतिक क़ानून के तहत है। इस दृष्टि से मनुष्य भौतिक विज्ञान का विषय भी है, मगर वह केवल जिस्म हीं नहीं है कि सिर्फ़ भौतिक विज्ञान से उसकी सारी समस्याएं हल की जा सकें। मनुष्य एक जीवंत अस्तित्व है, जिस पर जीव सम्बन्धी क़ानून लागू होते हैं। इस दृष्टि से वह जीव विज्ञान का विषय है। मगर वह केवल जीवधारी नहीं है कि सिर्फ़ जीव विज्ञान से ही उसकी ज़िन्दगी का पूरा क़ानून उद्वत किया जा सके। मनुष्य को जीवित रहने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की ज़रूरत होती है। इस दृष्टि से उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण विभाग अर्थशास्त्र की परिधि में आता है। मगर वह केवल एक खाने, पहनने और घर बनाकर रहने वाला प्राणी ही नहीं है कि केवल अर्थशास्त्र ही पर उसके जीवन-दर्शन की बुनियाद रख दी जाय। इंसान अपनी जाति को बाक़ी रखने के लिए बच्चे पैदा करने पर भी मजबूर है, जिसके लिए उसके अन्दर काम प्रवृत्ति की ज़बर्दस्त रूचि पायी जाती है। इस लिहाज़ से यौनशास्त्र भी उसकी ज़िन्दगी के एक अहम पहलू से संबन्ध रखता है। मगर वह केवल नस्ल बढ़ाने का यन्त्र नहीं है कि बस यौन शास्त्र ही की ऐनक लगाकर उसे देखा जाने लगे। मनुष्य एक मानसिक अस्तित्व भी रखता है, जिसने ज्ञान और सूझबूझ की विभिन्न क्षमताएं, भावनाएं और इच्छाओं की विभिन्न शक्तियां हैं। इस दृष्टि से उसके अस्तित्व का एक बड़ा हिस्सा मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है किन्तु उसका अस्तित्व सर्वथा मानसिक ही नहीं है कि मनोविज्ञान के अन्तर्गत उसकी ज़िन्दगी की पूरी योजना बनायी जा सके। इंसान एक सामाजिक प्राणी है जो स्वाभाविक रूप से दूसरे लोगों के साथ मिलकर रहने के लिए मजबूर

हैं। इस दृष्टि से उसके जीवन के बहुत से पहलू समाज शास्त्र के तहत आते हैं। लेकिन सामाजिक प्राणी होना ही उसका पूर्ण अस्तित्व नहीं है कि केवल समाजशास्त्र के विशेषज्ञ बैठकर उसके लिए पूरी जीवन-व्यवस्था तैयार कर सकें। मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्राणी है, जिसके अन्दर दृष्टिगोचर वस्तुओं के आगे बुद्धिगत चीज़ों की तलब भी पायी जाती है और बौद्धिक संतुष्टि चाहता है। इस लिहाज़ से तर्क व बौद्धिक शास्त्र उसकी इस ख़ास मांग को पूरा करते हैं। मगर इंसान पूरे का पूरा बुद्धि ही नहीं है कि केवल तर्क व बौद्धिक शास्त्र के बल पर उसके लिए जीवन-प्रणाली निर्धारित की जा सके। मनुष्य एक नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी है, जिसमें भले-बुरे की तमीज़ और बौद्धिक एवं दृष्टिगोचर दोनों प्रकार की चीज़ों से आगे की हक़ीक़तों तक पहुंचने की प्रेरणा भी पायी जाती है। इस दृष्टि से नीति शास्त्र और आध्यात्म शास्त्र इसकी एक और महत्वपूर्ण मांग को पूरा करते हैं। मगर वह सर्वथा नैतिकता और आत्मा ही नहीं है कि केवल नीतिशास्त्र और आध्यात्म शास्त्र के द्वारा उसके लिए पूर्ण जीवन-प्रणाली निर्धारित की जा सके। वास्तव में इंसान एक साथ ये सब कुछ है और इन तमाम हैसियतों के अलावा उसकी एक हैसियत यह भी है कि वह अपने तमाम अस्तित्व और अपने जीवन के सभी विभागों समेत ब्रह्मांड की इस विशालतम व्यवस्था का एक अंश है। उसकी ज़िन्दगी का नियम अनिवार्य रूप से इस बात को निश्चित करना चाहता है कि इस जगत में उसकी हैसियत क्या है और उसका हिस्सा होने की हैसियत से उसको किस तरह काम करना चाहिए? फिर उसके लिए यह भी अनिवार्य है कि वह अपने जीवन-उद्देश्य को निश्चित करे और उसी लिहाज़ से फ़ैसला करे कि उसे किसलिए काम करना है? ये आख़िरी दोनों सवाल मानव जीवन के बुनियादी प्रश्न हैं। इन्हीं पर एक जीवन-दर्शन का आविर्भाव होता है। फिर इस

जीवन-दर्शन के अन्तर्गत संसार और इंसान से संबन्ध रखने वाले सभी ज्ञान-विज्ञान अपने-अपने क्षेत्र से संबन्धित जानकारियां जुटाते हैं तथा कमोबेश इन सबसे मिलकर एक ऐसी प्रणाली बनती है, जिसके अनुसार मानव जीवन का पूरा कारख़ाना चलता है।

अब यह खुली हुई बात है कि अगर आप अपने जीवन की समस्या को सुलझाना चाहते हैं तो इसके लिए यह कोई सही तरीक़ा नहीं होगा कि आप खुर्दबीन लगाकर केवल एक ही मसले को देखें या ख़ास उसी जीवन विभाग के लिए जिससे उस समस्या का संबन्ध है एक प्रकार के पक्षपात को लेकर सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि डालें। बल्कि सही विवेक और जानकारी के लिए सम्पूर्ण में रखकर उसे देखना होगा तथा निष्पक्ष दृष्टि से देखना होगा। इसी तरह अगर आप ज़िन्दगी के किसी हिस्से में बिगाड़ पायें और उसे दूर करना चाहें तो यह और भी अधिक ख़तरनाक है कि आप किसी एक समस्या को ज़िन्दगी की कुल समस्या क़रार देकर सारे कारख़ाने को इसी एक पुर्ज़े के गिर्द घुमायें। ऐसा करके आप और अधिक असन्तुलन पैदा करेंगे। सुधार का सही तरीक़ा यह है कि पूरी जीवन-व्यवस्था को उसके मूलभूत दर्शन से लेकर फैली हुई शाखाओं तक को निष्पक्ष दृष्टिकोण से देखिए और खोज कीजिए कि ख़राबी किस जगह और किस प्रकार की है?

मनुष्य की आर्थिक समस्या को समझने और सही तौर पर हल करने में जो कठिनाइयां सामने आ रही हैं, उसकी बड़ी वजह यही है कि इस मसले को कुछ लोग सिर्फ़ अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से ही देखते हैं तो कुछ इसके महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर इसे जीवन की सम्पूर्ण समस्या क़रार दे रहे हैं। इसके अलावा कुछ लोग इससे भी आगे बढ़कर जीवन का बुनियादी दर्शन, नैतिकता, नागरिकता और समाज की सारी व्यवस्था की स्थापना आर्थिक आधार पर ही करना चाहते हैं। हालांकि अगर आर्थिक चीज़ों ही को आधार माना जाय तो मानव

जीवन का मक़सद उस बैल के जीवन के उद्देश्य से कुछ भी भिन्न नहीं ठहरता, जिसकी सारी कोशिश का अभिप्राय यह है कि हरी-हरी घास खाकर ख़ुश और ताक़तवर हो जाय और जगत में उसकी हैसियत ठहरती है कि वह दुनिया की चरागाहों में बस एक आज़ाद चरने-चुगने वाला पशु है। इसी तरह नीतिशास्त्र, आध्यात्म शास्त्र, न्यायशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और अन्य दूसरे सभी शास्त्रों के क्षेत्रों में भी आर्थिक दृष्टिकोण के छा जाने से असंतुलन का बहुत अधिक ख़तरा पैदा हो जाता है, क्योंकि इन सभी जीवन- विभागों के लिए अर्थ में कोई बुनियाद इसके सिवा नहीं है कि नैतिकता एवं आध्यात्म इच्छापूजा और भौतिकवाद का रूप धारण कर ले और मस्तिष्क पेट बनकर रह जाए। अगर सामांजिकता के नियमों का सारा संयोजन सामाजिक तथ्यों के बजाय कारोबारी उद्देश्यों पर आधारित हो और मनोविज्ञान में मनुष्य का अध्ययन सिर्फ़ एक आर्थिक पशु की हैसियत से किया जाने लगे तो क्या मानवता पर इससे बढ़कर कोई और ज़ुल्म हो सकता है।

## आर्थिक समस्या का मूल रूप

अब हम यदि पारिभाषिक और शास्त्रीय जटिलताओं से हटकर एक सीधे-साधे तरीक़े से देखें तो इंसान का आर्थिक मसला हमको यह नज़र आता है कि सभ्यता के विकास की रफ़्तार को क़ायम रखते हुए किस तरह सभी लोगों तक जीवन की ज़रूरत की चीज़ें पहुँचाने का प्रबन्ध हो और किस तरह समाज में हर व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार प्रगति करने, अपने व्यक्तित्व को विकसित करने और अपनी पूर्णता को प्राप्त होने तक अवसर उपलब्ध रहे?

प्राचीन काल में मनुष्य की आर्थिक समस्या लगभग उतनी ही

आसान थी जितनी कि यह जानवरों के लिए आसान है। ईश्वर की इस धरती पर जीवन की अगणित चीज़ें फैली हुई हैं। हर प्राणी के लिए जीविका की जितनी ज़रूरत है, वह भी प्रचुर मात्रा में मौजूद है। हरेक अपनी रोज़ी तलाश करने के लिए निकलता है और जाकर रोज़ी के ख़ज़ानों से प्राप्त कर लेता है। किसी को न इसकी क़ीमत चुकानी पड़ती है और न उसकी रोज़ी किसी दूसरे प्राणी के क़ब्ज़े में है। लगभग यह हालत इंसान की भी थी कि गया और प्राकृतिक जीविका चाहे वह फलों की शक्ल में हो या शिकार के जानवर की शक्ल में, हासिल कर लिया। प्राकृतिक पैदावार से शरीर ढाकने का इन्तिज़ाम कर लिया और ज़मीन में जहां भी मौक़ा देखा एक सिर छिपाने और पड़ रहने के लिए जगह बना ली। लेकिन ईश्वर ने मनुष्य को इसलिए नहीं पैदा किया था कि वह अधिक समय तक इसी हाल में रहे। उसने इंसान के अंदर ऐसी प्राकृतिक प्रेरणाएं रखीं थी कि वह एकाकी जीवन छोड़कर सामूहिक जीवन अपनाये और अपनी कारीगरी से अपने लिए जीवन के उन साधनों से बेहतर पैदा करे जो प्रकृति ने जुटाये थे। स्त्री और पुरुष के बीच सतत् संबन्धों की स्वाभाविक इच्छा, इंसानी बच्चों का अधिक समय तक मां-बाप की परवरिश का मुहताज होना, अपनी नस्ल के साथ इंसान की गहरी दिलचस्पी और ख़ूनी रिश्तों से मुहब्बत-ये वे चीज़ें हैं जो मनुष्य को सामाजिक जीवन अपनाने पर मजबूर करने के लिए स्वयं प्रकृति ही ने उसके अन्दर रख दी थीं। इस तरह मनुष्य का अपने आप उपजने वाली पैदावार पर बस न करना और खेतीबाड़ी से अपने लिए खुद ग़ल्ला पैदा करना, पत्तों से शरीर ढांकने पर ही बस न करना बल्कि अपनी कारीगरी से अपने लिए वस्त्र तैयार करना, गारों और भट्ठों में अपने रहने पर राज़ी न होना और अपने लिए ख़ुद घर बनाना, अपनी ज़रूरतों के लिए यन्त्रों का अविष्कार करना आदि। इन सबकी प्रेरणा भी प्रकृति ही ने उसके

अन्दर रखी थी। इसका भी अनिवार्य परिणाम यही था कि धीरे-धीरे वह सभ्य हो। अतः मनुष्य सभ्य और सुसंस्कृत हुआ, तो उसने कोई अपराध नहीं किया बल्कि उसकी प्रकृति का यही तक़ाज़ा और उसके सृष्टा की इच्छा यही थी।

सभ्यता के जन्म के साथ ही कुछ और चीज़ें अवश्यंभावी थीं।

पहली यह कि मानव जीवन की आवश्यकताएं बढ़ें और हर व्यक्ति स्वयं तमाम जीवन सामग्री न जुटा सके बल्कि उसकी कुछ ज़रूरतें दूसरों से और दूसरों की उससे जुड़ी हुई हों।

दूसरी यह कि जीवन सामग्री का विनिमय किया जाय और धीरे-धीरे चीज़ों के विनिमय का एक माध्यम तय हो जाय।

तीसरी यह कि ज़रूरत की चीज़ें तैयार करने के यन्त्र और परिवहन के साधन बढ़ाये जायं तथा जितनी नयी चीज़ों का मनुष्यों को ज्ञान हो, उन सबसे लाभ उठाता चला जाय।

चौथी यह कि आदमी को इसका इत्मिनान हो कि जो चीज़ें उसने अपनी मेहनत से हासिल की हैं, वे यन्त्र जिनसे वह काम करता है, वह ज़मीन जिस पर उसने घर बनाया है, वह स्थान जिसमें वह अपने पेशे का काम करता है, ये सब उसी के क़ब्ज़े में रहेंगे और उसके बाद उन लोगों को दे दी जायेंगी, जो दूसरों की अपेक्षा उसके अपने क़रीबी लोग होंगे।

इस तरह विभिन्न व्यवसायों का पैदा होना, क्रय-विक्रय, वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण, मूल्य के मापदंड के तौर पर रुपये का चलन, अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन और आयात-निर्यात तक नौबत पहुंचना, उत्पादन के नये साधनों और यन्त्रों का इस्तेमाल में आना, मिल्कियत के अधिकार और विरासत का वजूद में आना-यह सब स्वाभाविक रूप से हुआ तथा इनमें से कोई भी चीज़ गुनाह नहीं थी कि उसका त्याग कर 'तौबा' करने की आवश्यकता हो।

फिर नागरिकता और सभ्यता के विकास के साथ यह भी ज़रूरी था कि—

(१) विभिन्न मनुष्यों की शक्तियों और योग्यताओं के बीच जो अन्तर प्रकृति ने रखा है, उसकी वजह से कुछ लोगों को अपनी मूल आवश्यकता से अधिक कमाने का मौक़ा मिल जाय और कुछ अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ और कुछ इससे भी कम कमायें।

(२) कुछ लोगों को विरासत के ज़रिये ज़िन्दगी शुरू करने के अच्छे संसाधन उपलब्ध हो जायं, कुछ कम संसाधन के साथ और कुछ बिना संसाधन के जीवन-क्षेत्र में क़दम रखें।

(३) प्राकृतिक कारणों से हर आबादी में ऐसे लोग मौजूद रहें जो अर्थ-उपार्जन के काम में हिस्सा लेने और विनिमय कार्य में शरीक होने में पूरी तरह असमर्थ हों जैसे-बच्चे, बूढ़े, बीमार और विकलांग आदि।

(४) कुछ लोग सेवा लेने वाले और कुछ लोग सेवा करने वाले हों और इस तरह मुक्त कला-कौशल, व्यापार और कृषि के अलावा नौकरी तथा मज़दूरी की सूरत भी पैदा हो जाय।

ये सब भी स्वयं मानव सभ्यता के स्वाभाविक प्रतीक और प्राकृतिक पहलू हैं। इन सूरतों का पैदा होना भी अपनी जगह कोई बुराई या गुनाह नहीं है कि इनके उन्मूलन की चिन्ता की जाय। सभ्यता की ख़राबी के दूसरे कारणों से जो बुराइयां पैदा होती हैं, उनके मौलिक कारण को न पाकर बहुत से लोग घबरा उठते हैं। वे कभी निजी मिल्कियत को, कभी रुपये को, कभी मशीन को, कभी मनुष्य की स्वाभाविक समानता को और कभी स्वयं सभ्यता ही को कोसने लगते हैं। लेकिन वास्तव में रोग का यह निर्धारण और यह इलाज ही ग़लत है। मानव प्रकृति के फलस्वरूप सभ्यता में जो विकास होता है

और इससे स्वाभाविक रूप से जो परिस्थितियां पैदा होती हैं, उनको रोकने की हर कोशिश नादानी है। उसके नतीजे में भलाई के बजाय तबाही की संभावना अधिक है। मनुष्य की वास्तविक आर्थिक समस्या यह नहीं है कि सभ्यता के विकास को किस तरह रोका जाय और उसके स्वाभाविक प्रतीकों को किस तरह बदला जाय, बल्कि वास्तविक समस्या यह है कि सभ्यता के विकास की स्वाभाविक रफ़्तार को बरक़रार रखते हुए सामाजिक ज़ुल्म व़ बेइंसाफ़ी को कैसे रोका जाय और प्रकृति का यह उद्देश्य कि हर प्राणी को उसकी रोज़ी पहुंचे-कैसे पूरा किया जाय और उन रुकावटों को किस तरह दूर किया जाय, जिनके कारण बहुत से लोगों की शक्तियां और योग्यताएं मात्र संसाधनों के अभाव के कारण नष्ट हो जाती हैं।

## अर्थ-व्यवस्था की ख़राबी के कारण

अब हमें देखना चाहिए कि ख़राबी के मूल कारण क्या हैं और ख़राबी किस प्रकार की है?

अर्थ-व्यवस्था की ख़राबी का प्रारम्भ है स्वार्थपरता का हद से बढ़ जाना। फिर दूसरे प्रकार के नैतिक ह्रासों और एक विकृत राजनीतिक व्यवस्था की मदद से यह चीज़ बढ़ती और फैलती है। यहां तक कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को ख़राब करके ज़िन्दगी के बाक़ी हिस्सों में भी अपना विष फैला देती है। इन्हें मैं बयान कर चुका हूँ कि निजी मिल्कियत और कुछ लोगों का कुछ लोगों की अपेक्षा बेहतर आर्थिक स्थिति में होना, ये दोनों बातें स्वाभाविक मांग थी और इनमें अपनी जगह कोई ख़राबी न थी। अगर मनुष्य के सभी नैतिक गुणों को संतुलित रूप में काम करने का मौक़ा मिलता और बाह्य रूप से भी एक ऐसी सरकार मौजूद होती जो अपनी शक्ति और बल के साथ न्याय की स्थापना करती तो इनसे कोई ख़राबी नहीं पैदा हो सकती थी।

लेकिन जिस चीज़ ने इन ख़राबियों को जन्म दिया, वह यह थी स्वाभावतः जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, वे स्वार्थपरता, संकीर्णता, अदूरदर्शिता, लोभ, कंजूसी, बेईमानी और अपनी इच्छाओं की पूजा में पड़कर रहे गये। शैतान ने उन्हें समझाया कि आपकी वास्तविक आवश्यकता से अधिक जीवन के संसाधन जो आपको मिलते हैं और जो आपकी मिल्कियत में हैं, उनका सही और उचित इस्तेमाल सिर्फ़ दो हैं। एक यह कि इनको अपनी सुख-सुविधा, मनोरंजन और ऐश में लगाओ और दूसरे यह कि इनको और अधिक संसाधनों पर कब्ज़ा करने के लिए इस्तेमाल करो और बन पड़े तो उन्हीं के ज़रिये इंसानों के खुदा बन जाओ।

पहली शैतानी शिक्षा का नतीजा यह हुआ कि पूंजीपतियों ने समाज के उन लोगों का हक मानने से इनकार कर दिया जो सम्पत्ति के बंटवारे में हिस्सा पाने से वंचित रह जाते हैं या अपनी मूल आवश्यकताओं से कम हिस्सा पाते हैं। उन्होंने इसे वैध समझा कि उन लोगों को भुखमरी और दयनीय दशा में छोड़ दिया जाय। वे अपनी संकीर्ण दृष्टि के कारण यह न देख सके कि इस रवैये से समाज के बहुत से लोग अपराध की राह पर चल पड़ते हैं, अज्ञान और नैतिक गिरावट के शिकार होते हैं, शारीरिक कमज़ोरी और रोग में ग्रस्त होते हैं। उनकी शारीरिक शक्ति न तो विकसित हो पाती है और न मानव सभ्यता के विकास में अपना योगदान दे पाती है और इससे उस समाज को सामूहिक हानि पहुँचती है, जिसका पूंजीपति भी एक अंग है। इसी पर बस नहीं, बल्कि इन पूंजीपतियों ने अपनी वास्तविक आवश्यकताओं से आगे बढ़कर अगणित आवश्यकताओं की अभिवृद्धि की और बहुत से इंसानों को हालांकि उन इंसानों की योग्यताओं को सभ्यता और संस्कृति की अच्छी से अच्छी सेवाओं में लगाया जा सकता था, अपनी निज की गढ़ी हुई ज़रूरतों को पूरा करने

के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। उनके लिए व्याभिचार एक आवश्यकता थी, जिसकी ख़ातिर व्यभिचारणी स्त्रियों और निर्लज्ज व्यक्तियों की एक फ़ौज बन गयी। और उनके लिए राग-रंग की भी आवश्यकता थी, जिसके लिए गायकों, नर्तक-नर्तकियों, वादकों और वाद्य यन्त्रों को तैयार करने वालों का एक और गरोह तैयार किया गया। उनके लिए नाना प्रकार के मनोरंजनों की भी आवश्यकता थी, जिनके लिए कथा वक्ताओं, चित्रकारों, विदूषकों, नक़्क़ालों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों तथा बहुत से फ़िज़ूल पेशेवरों का एक और बहुत बड़ा गरोह जुटाया गया। उनके लिए शिकार भी ज़रूरी था, जिसके ख़ातिर बहुत से लोगों को भले काम पर लगाने के बजाय उन्हें जंगलों में जानवरों को हांकने पर लगा दिया गया। उनके लिए आनन्द रस और आत्मविस्मृत भी एक ज़रूरत थी, इसके लिए बहुत से इंसान शराब, कोकीन, अफ़ीम और दूसरे मादक पदार्थों को जुटाने में लगाये गये। सारांश यह कि इस तरह शैतान के इन भाइयों ने इतने ही पर दया नहीं की कि निर्दयता के साथ समाज के एक बड़े हिस्से को नैतिक, शारीरिक और आध्यात्मिक तबाही में ग्रस्त होने के लिए छोड़ दिया बल्कि इसके अतिरिक्त एक जुल्म यह भी किया कि समाज के एक और बड़े हिस्से को सही और उपयोगी कामों से हटाकर अशिष्ट, अपमानजनक और हानिकारक कामों में लगा दिया तथा सभ्यता की रफ्तार को सही मार्ग से हटाकर ऐसे रास्तों की तरफ़ मोड़ दिया जो इंसानों को तबाही की ओर ले जाने वाले हैं। फिर मामले का अन्त यहीं नहीं हो गया। मानव पूंजी को नष्ट करने के साथ उन्होंने भौतिक पूंजी को भी ग़लत तरीक़े से इस्तेमाल किया। उनको महलों, कोठियों, फुलवाड़ियों, मनोरंजन के स्थलों, नाचघरों आदि की ज़रूरत पड़ी, यहां तक कि मरने के बाद ज़मीन पर लेटने के लिए भी इन कमबख़्तों को एकड़ों ज़मीन और आलीशान भवनों की ज़रूरत पेश आयी। इस

तरह वह ज़मीन, वह निर्माण का सामान और वह मानव श्रम, जो बहुत से लोगों के लिए रिहाइश का प्रबन्ध करने के लिए काफ़ी हो सकता था, एक-एक विलासी आदमी के आवास और स्थाई ठिकानों पर लग गया। उनको आभूषणों, उत्तम वस्त्रों, उत्कृष्ट यन्त्रों व बर्तनों, श्रृंगार और साज-सज्जा की चीज़ों, शानदार सवारियों और न जाने किन-किन चीज़ों की ज़रूरत हुई। यहां तक कि इन ज़ालिमों के दरवाज़े भी क़ीमती परदों के बग़ैर नंगे समझे जाते थे। उनकी दीवारें भी सैकड़ों और हज़ारों रुपये की तस्वीरों से सुसज्जित हुए बग़ैर न रह सकती थीं। उनके कमरों की ज़मीन भी हज़ारों रुपये की क़ालीन ओढ़ना चाहती थी। उनके कुत्तों को भी मख़मल के गद्दे और सोने के पट्टे की ज़रूरत थी। इस तरह वे बहुत सी सामग्री और प्रचुर मानव श्रम जो हज़ारों लोगों के तन ढांकने एवं पेट भरने के काम आ सकता था, उसे एक-एक व्यक्ति की विलासिता और अय्याशी पर लगा दिया गया।

यह तो शैतान के मार्ग-दर्शन के एक हिस्से का नतीजा था। दूसरे-मार्ग दर्शन के परिणाम इससे भी अधिक ख़राब निकले। यह सिद्धांत कि किसी व्यक्ति के क़ब्ज़े में उसकी अपनी ज़रूरत से अधिक जीविका के जो साधन आ गये हों, उनको वह एकत्र करता चला जाय और फिर अधिक जीविका के साधन प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल करे तो पहली बात तो यह स्पष्टतया ग़लत है। विदित है कि ईश्वर ने जीविका की जो सामग्री धरती पर पैदा की है, उसे प्राणियों की वास्तविक ज़रूरतें पूरी करने के लिए पैदा की है। आपके पास सौभाग्य से अगर कुछ अधिक सामग्री आ गयी है तो यह दूसरों का हिस्सा था, जो आप तक पहुंच गया। इसे एकत्र करने कहां चले? अपने चारों तरफ़ देखिए, जो लोग जीवन सामग्री में से अपना हिस्सा प्राप्त करने के योग्य नज़र आते या उसे प्राप्त करने में असफल रह गये हैं या

जिन्होंने अपनी ज़रूरतों से कम पाया है, समझ लीजिए कि यही वे लोग हैं जिनका हिस्सा आप तक पहुंचा है वे प्राप्त नहीं सके तो आप उन तक पहुंचा दीजिए। यह सही काम करने के बजाय अगर आप उन सामानों को और अधिक आर्थिक संसाधन प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल करेंगे तो यह ग़लत काम होगा, क्योंकि बहरहाल आप वह अतिरिक्त सामग्री जो हासिल करेंगे आपकी ज़रूरत से और भी ज़्यादा होगी। फिर इनको हासिल करने की कोशिश सिवाय इसके कि आपकी लोभ-लिप्सा को पूरी करे और इसके सिवा इसमें और क्या अच्छा पहलू हो सकता है ? जीविका की चीज़ें प्राप्त करने की कोशिश में आप अपने समय, श्रम और योग्यता का जितना भाग अपनी ज़िन्दगी की ज़रूरतें पूरी करने के लिए ख़र्च करते हैं, उसका व्यय तो सही और उचित रूप में होता है। मगर इस मौलिक आवश्यकता से अधिक चीज़ों को इस काम में लगाने का मतलब यह होता है कि आप आर्थिक पशु बल्कि धन पैदा करने की मशीन बन रहे हैं। हालांकि आपको समय, श्रम, मानसिक और शारीरिक शक्तियों के लिए अर्थ-उपार्जन के सिवा और अच्छे काम भी हैं। अतः बुद्धि और प्रकृति के लिहाज़ से यह सिद्धांत सिरे से ग़लत है जो शैतान ने अपने शिष्यों को सिखाया है। लेकिन इस सिद्धांत के आधार पर जो व्यापारिक तरीक़े बनाये गये हैं वे इतने भर्त्सना के योग्य और उनके नतीजे इतने भयानक हैं कि उनका सही अंदाज़ा करना भी अत्यंत कठिन है।

ज़रूरत से अधिक अर्थ-साधनों को तद्धिक संसाधन क़ब्ज़े में लाने के लिए इस्तेमाल करने की दो सूरतें हैं—

एक यह कि इन साधनों को सूद पर क़र्ज़ दिया जाय।

दूसरे यह कि उन्हें व्यापारिक और औद्योगिक कार्यों में लगाया जाय।

ये दोनों विधियां अपनी प्रकृति में एक-दूसरे से भिन्न ज़रूर हैं लेकिन दोनों के संयुक्त रूप से व्यवहृत होने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि समाज दो वर्गों में बंट जाता है। एक वह अल्प वर्ग जो अपनी ज़रूरत से अधिक आर्थिक संसाधन रखता है और अपने साधनों को और अधिक संसाधन प्राप्त करने के लिए लगा देता है। दूसरा वह बड़ा तबक़ा जो अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़ या इससे कम संसाधन रखता है या बिलकुल नहीं रखता। इन दोनों तबक़ों के हित न सिर्फ़ एक-दूसरे के खिलाफ़ होते हैं बल्कि इनके बीच अनिवार्यतः संघर्ष और विवाद खड़ा हो जाता है। और इस तरह मानव की अर्थव्यवस्था, प्रकृति ने विनिमय और पारस्परिक लेन-देन को जिसका आधार बनाया था, वह एक प्रकार से पारस्परिक युद्ध पर स्थापित होकर रह जाती है।

फिर यह युद्ध और संघर्ष जितना बढ़ता जाता है, मालदार तबक़ा तादाद में कम और ग़रीब तबक़ा अधिक होता चला जाता है, क्योंकि यह संघर्ष है ही कुछ इस प्रकार का कि जो ज़्यादा मालदार है वह अपने माल के ज़ोर से कम मालदार लोगों के संसाधन भी खींच लेता है और उसे ग़रीब तबक़े में ढकेल देता है। इस तरह धरती के आर्थिक संसाधन दिन-प्रतिदिन आबादी के कम से कम हिस्से के पास सिमटते चले जाते हैं और दिन-प्रतिदिन आबादी का अधिक से अधिक भाग ग़रीब या मालदारों का मुहताज होता चला जाता है।

प्रारम्भ में यह युद्ध या संघर्ष छोटे पैमाने पर शुरू होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते देशों और राष्ट्रों तक फैलता है यहां तक कि सारे संसार को अपनी लपेट में लेकर भी उसका पेट नहीं भरता। इसकी सूरत यह है कि जब एक देश का आम क़ानून यह हो जाता है कि जिन लोगों के पास अपनी आवश्यकता से अधिक माल हो, वे अपने अतिरिक्त माल लाभकारी कामों में लगायें और यह माल ज़रूरत के सामानों के

निर्माण पर ख़र्च हो तो उनकी लगायी हुई पूरी रक़म का लाभ सहित लौटना इस बात पर निर्भर करता है कि जितनी वस्तुएं देश में तैयार हुई हैं, वे सब की सब उसी देश में ख़रीद ली जायं, परन्तु व्यवहारतः ऐसा नहीं होता। और वास्तव में यह हो भी नहीं सकता क्योंकि ज़रूरत से कम माल रखने वालों की क्रयशक्ति कम होती है। इसलिए वे ज़रूरत होने के बावजूद इन चीज़ों को नहीं खरीद सकते और आवश्यकता से अधिक माल रखने वालों को यह चिन्ता रहती है कि जितनी आमदनी हो उस में से एक हिस्सा बचाकर लाभकारी कामों में लगायें। इस लिए वे अपना सब माल ख़रीदारी पर ख़र्च नहीं करते इस तरह अनिवार्य रूप से तैयार किये गये माल का एक हिस्सा बिना बिके रह जाता है, जिसका दूसरा अर्थ यह है कि पूंजीपतियों की लगायी हुई रक़म का एक भाग लौटने से रह गया और यह रक़म देश के उद्योग पर क़र्ज़ रही। यह केवल एक चक्कर का हाल है। आप अनुमान कर सकते हैं कि ऐसे जितने चक्कर होंगे, उनमें से प्रत्येक में मालदार तबक़ा अपनी प्राप्त आय का एक हिस्सा फिर लाभकारी कामों में लगाता चला जायेगा और जो रक़म लौटने से रह जाती है, उनकी मात्रा हर चक्कर में बढ़ती चली जायेगी तथा देश के उद्योग पर ऐसे क़र्ज़ का बोझ दोगुना, चौगुना, हज़ार गुना होता चला जायेगा, जिसको वह देश स्वयं कभी अदा नहीं कर सकता। इस प्रकार एक देश को दीवालियेपन का जो ख़तरा आ पड़ता है, उससे बचने का उपाय इसके सिवा नहीं कि जितना माल देश में बिकने से रह जाय, उसे दूसरे देशों में ले जाकर बेचा जाय यानी ऐसे देश तलाश किये जायं, जिनकी ओर ये देश अपने दीवालियेपन को स्थानान्तरित कर दे।

इस प्रकार यह युद्ध या संघर्ष देश की सीमाओं से गुज़र कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क़दम रखता है। अब यह स्पष्ट है कि कोई एक देश ही ऐसा नहीं है जो इस शैतानी अर्थव्यवस्था पर चल रहा हो

बल्कि संसार के अक्सर देशों का यही हाल है कि वे अपने आपको दीवालियेपन से बचाने के लिए या दूसरे शब्दों में अपने दीवालियेपन को किसी और मुल्क पर डाल देने के लिए मजबूर हो गये हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है और वह कुछ रूपों में बंट जाती है—

एक यह कि प्रत्येक देश अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपना माल बेचने की कोशिश करता है कि कम से कम लागत पर अधिक से अधिक माल तैयार करे। इस उद्देश्य से कर्मचारियों के वेतन बहुत कम रखे जाते हैं और आर्थिक कारोबार में देश की आम जनता इतना कम हिस्सा पाती है कि उसकी मौलिक ज़रूरतें भी नहीं पूरी होतीं।

दूसरा यह कि हर देश अपना सीमा में और उस क्षेत्र में जो उसके प्रभाव में होते हैं, दूसरे देश का माल आने पर प्रतिबन्ध लगाता है और कच्चे माल के उत्पादन के जितने साधन उसके अधिकार में हैं, उन पर भी पहरे बैठाता है ताकि दूसरा देश उनसे फ़ायदा न उठा सके। इससे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष पैदा होता है, जिसका परिणाम युद्ध होता है।

तीसरा यह कि ऐसे देश जो इस दीवालियेपन की मुसीबत को अपने सिर आने से नहीं रोक सकते, उन पर लुटेरे टूट पड़ते हैं और सिर्फ़ अपने देश के बचे-खुचे माल ही को उनमें बेचने की कोशिश नहीं करते बल्कि जिस धन को खुद अपने यहां लाभकारी काम में लगाने की गुंजाइश नहीं होती, उसे भी उन देशों में ले जाकर लगाते हैं। इस प्रकार अन्ततः उन देशों में भी वही समस्या पैदा हो जाती है जो प्रारम्भ में रुपया लगाने वाले देशों में पैदा हुई थी यानी जितना रुपया वहां लगाया जाता है, वह सारा का सारा वसूल नहीं हो सकता। और उस रुपये से जितनी भी आमदनी होती है, उसका एक बड़ा हिस्सा फिर तद्धिक लाभकारी कामों में लगा दिया जाता है, यहां तक

कि उन देशों पर क़र्ज़ का भार इतना बढ़ता चला जाता है कि अगर स्वयं उन देशों को बेच दिया जाय, तब भी लगायी हुई कुल रक़म वापस नहीं हो सकती।

स्पष्ट है कि अगर यह चक्र चलता रहे तो अन्ततः सारी दुनिया दीवालिया हो जायेगी और धरती पर कोई ऐसा भू-भाग बाक़ी न रहेगा, जिसकी तरफ़ इस दीवालियेपन के संकट को स्थानान्तरित किया जा सके, यहां तक कि फिर यह आवश्यकता होगी कि मंगल, वृहस्पति और शुक्र ग्रहों में रुपये लगाने और अतिरिक्त माल को खपाने के लिए बाज़ार तलाश किये जायं।

इस विश्वव्यापी युद्ध या संघर्ष में बैंकरों, आढ़तियों और उद्योग-व्यापार के पूंजीपतियों का मुट्ठी भर गरोह सारी दुनिया की आर्थिक सामग्री और संसाधनों पर इस तरह हावी हो गया है कि सारी मानव जाति उनके मुक़ाबले बिलकुल निरुपाय होकर रह गयी है। अब किसी व्यक्ति के लिए लगभग यह असंभव हो गया है कि वह अपने हाथ-पैर की मेहनत से और अपने दिमाग़ की योग्यता से कोई काम स्वतन्त्र रूप से कर सके और ईश्वर की धरती पर मौजूद जीवन सामग्री में से खुद कोई हिस्सा हासिल कर सके। छोटे व्यापारी, छोटे कारीगर और छोटे किसान के लिए आज संसार में हाथ पैर मारने की कोई गुंजाइश बाकी नहीं रह गयी है। सब के सब आर्थिक कारोबार के इन बादशाहों के ग़ुलाम और नौकर तथा मज़दूर बनने के लिए मजबूर हैं। और ये लोग कम से कम जीवन सामग्री के बदले में उनके शरीर और मस्तिष्क की सारी शक्तियां और उनका सारा समय ले लेते हैं, जिसके कारण पूरी मानव जाति बस एक आर्थिक पशु बनकर रह गयी है। बहुत कम सौभाग्यशाली लोगों को इस आर्थिक संघर्ष में इतनी फुर्सत मिल पाती है कि अपने नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए भी कुछ कर सकें और किसी ऐसे उद्देश्य की ओर ध्यान दे सकें

जो पेट भरने के उद्देश्य से ऊंचा हो। और अपने व्यक्तित्व के उन तत्वों को विकसित कर सकें जो रोज़ी की तलाश के सिवा दूसरे पवित्रतम उद्देश्यों के लिए ईश्वर ने उनके अन्दर रखे थे। वास्तव में इस शैतानी व्यवस्था के कारण आर्थिक संघर्ष इतना कठोर रूप धारण कर लेता है कि जीवन के सभी दूसरे विभाग इसके कारण बेकार और निष्क्रिय हो जाते हैं।

इससे बढ़कर मनुष्य का यह दुर्भाग्य है कि संसार के नैतिक दर्शन, राजनीतिक व्यवस्थाएं और क़ानूनी सिद्धांत भी इस शैतानी अर्थव्यवस्था से प्रभावित हो गये। पूरब से पश्चिम तक हर तरफ़ नैतिकता के आचार्य फ़िज़ूलख़र्ची से बचने पर ज़ोर दे रहे हैं। जितना कमाना, उतना ही ख़र्च कर देना-एक मूर्खता और एक नैतिक दोष समझा जाता है और हर व्यक्ति को यह शिक्षा दी जाती है कि अपनी आय में से कुछ न कुछ बचा करके बैंक में डिपाज़िट रखे या बीमा पालिसी ख़रीदे या कम्पनियों के शेयर प्राप्त करे। मानो जो चीज़ मानवता का विनाश करने वाली है, वही नैतिकता की दृष्टि में अच्छाई का मापदंड बन गयी है। रही राजनीतिक शक्ति तो वह व्यवहारतः बिलकुल ही एक शैतानी व्यवस्था के क़ब्ज़े में आ चुकी है। वह इस ज़ुल्म से मनुष्यों को बचाने के बजाये ख़ुद ज़ुल्म करने की मशीन बनी हुई है। और हर तरफ़ शासन की कुर्सियों पर शैतान के एजेन्ट बैठे नज़र आते हैं। इसी तरह संसार के क़ानून भी इस व्यवस्था के प्रभाव के अन्तर्गत संयोजित हो रहे हैं।

इन क़ानूनों ने लोगों को व्यवहारतः पूरी छूट दे रखी है कि वे जिस तरह चाहें समाज हित के विपरीत अपने आर्थिक उद्देश्यों के लिए प्रयास करें। रुपये कमाने के तरीक़ों में वैध और अवैध का फ़र्क़ क़रीब-क़रीब लुप्त हो गया है। हर वह तरीक़ा जिससे कोई व्यक्ति

दूसरों को लूटकर या तबाह कर के धनवान बन सकता हो, क़ानून की नज़र में जायज़ है। शराब बनाइये और बेचिए, व्यभिचार के अड्डे स्थापित कीजिए, कामोत्तेजक फिल्में बनाइये, अश्लील निबन्ध लिखिए, वासनामय भावनाओं को भड़काने वाली तस्वीरें प्रकाशित कीजिए, सट्टे का कारोबार फैलाइये, सूदखोरी की संस्थाएं स्थापित कीजिए और जुएबाज़ी के नये-नये तरीक़े निकालिये, सारांश यह कि जो चाहे कीजिए, क़ानून न सिर्फ आपको इसकी इजाज़त देगा बल्कि उल्टे आपके अधिकारों की भी रक्षा करेगा। फिर इस तरीक़े से जो धन सिमटकर एक व्यक्ति के पास जमा हो गया हो, क़ानून यह चाहता है कि वह उसके मरने के बाद भी एक ही जगह सिमटा रहे। अतएव बड़े बेटे के वारिस होने का नियम और कुछ क़ानून बनाने का तरीक़ा एवं संयुक्त परिवार का नियम- इन सबका उद्देश्य यही है कि ख़ज़ाने का एक सांप मरे तो उस पर दूसरा सांप बिठा दिया जाय और अगर दुर्भाग्य से उस सांप ने कोई सपोला न छोड़ा हो तो कहीं और से सपोला प्राप्त किया जाय ताकि धन के इस सिमटाव में कोई अन्तर न आने पाये।

इन कारणों से मानव जाति के लिए यह समस्या पैदा हुई है कि ईश्वर की इस धरती पर हर व्यक्ति को किस तरह का जीवन-सामग्री पहुंचाने का प्रबन्ध किया जाय और हर व्यक्ति को अपनी योग्यता के मुताबिक़ तरक़्क़ी करने तथा अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के अवसर कैसे मिलें?

## साम्यवाद का प्रस्तावित हल

इस समस्या के हल का एक उपाय साम्यवाद ने पेश किया है और वह यह है कि धन के उत्पादन के साधनों को निजी मिल्कियत से निकालकर उसे राष्ट्रीय मिल्कियत का बना दिया जाय और लोगों में

रोज़ी तक़सीम करने का प्रबन्ध भी राष्ट्र को सौंप दिया जाय। देखने में यह हल अत्यन्त उचित नज़र आता है, लेकिन इसके व्यावहारिक पहलुओं पर आप जितना ध्यान देंगे, उतने ही इसके दोष आपके सामने आते चले जायेंगे यहां तक कि आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि अन्ततः इसके परिणाम भी उतने ही ख़राब हैं, जितने उस बीमारी के परिणाम हैं, जिसका इलाज करने के लिए इसे अपनाया गया है। यह बिलकुल एक खुली हुई बात है कि उत्पादन के साधनों से काम लेने और पैदावार को वितरित करने का प्रबन्ध चाहे सैद्धांतिक तौर पर पूरे राष्ट्र या समाज़ के हवाले कर दिया जाय, मगर व्यवहारतः यह काम एक छोटी सी प्रशासनिक व्यवस्था को ही सुपुर्द करना होगा। यह छोटा गरोह शुरू में समाज ही का चुना हुआ ही सही, लेकिन ज़ब जीविका के सभी साधन उसी के कब्ज़े में होंगे और उसी के हाथों से लोगों तक पहुंच सकेंगे तो सारी आबादी उसकी मुट्ठी में विवश होकर रह जायेगी। उसकी इच्छा के विरुद्ध देश में कोई भी व्यक्ति सांस तक नहीं ले सकता और न ही उसके मुकाबले में कोई ऐसा संगठित दल उभर सकेगा जो उसको पद और प्रभुत्व से हटा सके। किसी से उसकी नज़र के फिरने का अर्थ यह होगा कि वह इस धरती पर ज़िन्दगी बिताने के सभी साधनों से वंचित हो जाय। क्योंकि सभी संसाधनों पर उस छोटे गरोह ही का कब्ज़ा होगा। मज़दूरों में इतनी शक्ति और साहस न होगा कि उसकी व्यवस्था से नाराज़ हों तो हड़ताल कर दें, क्योंकि वहां बहुत से उद्योगपति न होंगे कि अगर कोई एक के द्वार से उठे तो दूसरे के द्वार पर चला जाय, बल्कि पूरे देश में एक ही उद्योगपति होगा और वही शासक भी होगा। और उसके ख़िलाफ़ किसी जनमत की सहानुभूति भी नहीं प्राप्त की जा सकेगी। इस स्थिति का जो अन्तिम परिणाम होगा, वह यह है कि तमाम पूंजीपतियों को खाकर एक बड़ा पूंजीपति, तमाम उद्योगपतियों और

जमींदारों को खाकर एक बड़ा उद्योगपति और ज़मींदार लोगों पर छा जाय और वही एक समय ज़ार भी हो और क़ैसर भी।

सबसे पहली बात तो यह कि राजसत्ता और ऐसी निरंकुश सत्ता वह चीज़ है जिसके नशे में बहककर क्रूर और अत्याचारी बनने से बचना इंसान के लिए बहुत कठिन है। विशेष रूप से जबकि अपने ऊपर किसी ईश्वर का और उसके सामने उत्तरदायी होने का यक़ीन भी न रखता हो। फिर भी अगर यह मान लिया जाय कि निरंकुश सत्ता पर क़ब्ज़ा जमाने के बाद भी छोटा सा गरोह आपे से बाहर नहीं होगा और न्याय ही के साथ काम करेगा, तब भी ऐसी एक व्यवस्था में व्यक्तियों के लिए अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए सबसे अधिक जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह यह है कि उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हो, कुछ साधन उसके अपने हाथ में हों, जिन्हें वह अपने अधिकार से इस्तेमाल कर सके तथा उन साधनों पर अपनी रुचि के अनुसार काम करके अपनी छुपी हुई शक्तियों को उभारे और चमकाये। मगर साम्यवादी व्यवस्था में इसकी कोई संभावना नहीं। उसमें साधन व्यक्तियों के अधिकार में नहीं रहते बल्कि समाज की प्रशासनिक व्यवस्था के हाथों में चले जाते हैं। और वह प्रशासनिक व्यवस्था सामाजिक हित की जो धारणा रखती है, उसी के अनुसार उन साधनों को काम में लाती है। लोगों के लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं है कि वे यदि उन साधनों से लाभ उठाना चाहें तो उस नक़्शे के मुताबिक़ काम करें बल्कि उसी नक़्शे के अनुसार जो प्रबन्धकों ने सामाजिक हित के लिए पेश किया है, अपने आपको ढाले जाने के लिए ख़ुद को इन प्रबन्धकों को सौंप दें। जो चीज़ व्यवहारतः समाज के सभी लोगों को कुछ व्यक्तियों के क़ब्ज़े में इस तरह दे देती है कि मानो वे सब निर्जीव कच्चा माल हैं और जैसे चमड़े के जूते और लोहे के पुर्ज़े बनाये जाते हैं, उसी तरह वे थोड़े से लोग इसका अधिकार रखते हैं कि वे बहुत से लोगों को अपने नक़्शे के मुताबिक़ ढालें और बनायें।

मानव सभ्यता और संस्कृति के लिए वह इतना अधिक हानिकारक है कि अगर थोड़ी देर के लिए हम मान भी लें कि इस प्रणाली के अन्तर्गत जीवन सामग्री न्याय के साथ वितरित भी होगी तो इसका लाभ उस हानि की अपेक्षा नगण्य हो जाता। संस्कृति और सभ्यता का पूर्ण विकास इस पर निर्भर करता है कि विभिन्न व्यक्ति जो विभिन्न प्रकार की शक्तियां और योग्यताएं लेकर पैदा होते हैं, उनको पूरी तरह विकसित करने और फिर इस संयुक्त जीवन में उन्हें अपना-अपना हिस्सा अदा करने का मौक़ा मिले। यह बात ऐसी प्रणाली में संभव नहीं हो सकती जिसमें मानवों की प्लानिंग की जाती हो। थोड़े से लोग चाहे वे कितने ही योग्य और कितने ही शुभचिन्तक हों, बहरहाल इतने ज्ञानवान और ख़बर रखने वाले नहीं हो सकते कि लाखों और करोड़ों व्यक्तियों की पैदाइशी योग्यताओं और उनकी स्वाभाविक रुचियों का सही अंदाज़ा कर सकें। और फिर उनके विकास और उन्नति का ठीक-ठीक मार्ग निश्चित कर सकें। वे इसमें अज्ञान के कारण भी ग़लती करेंगे और सामाजिक हित या सामाजिक ज़रूरतों के संबन्ध में जो उनका अन्दाज़ा होगा, उसकी दृष्टि से भी यह चाहेंगे कि उनके प्रभाव में इंसानों की जितनी आबादी हो, उनके नक़्शे से ढाल दी जाय। इससे सभ्यता की रंगारंगी का अन्त हो जायेगा और वह एक निर्जीव समानता का रूप धारण कर लेगी। इससे सभ्यता का स्वाभाविक विकास रुक जायेगा और एक तरह का कृत्रिम विकास शुरू हो जायेगा। इससे मानवीय शक्तियां ठिठरती चली जायेंगी और अन्ततः एक भारी मानसिक और नैतिक ह्रास का सामना करना होगा। मनुष्य किसी भी स्थिति में क्यारी की घास और बेल बूटे नहीं हैं कि एक माली उन्हें काट-छांटकर ठीक-ठाक कर ले और वे उसी के नक़्शे पर घटते और बढ़ते रहें। हर व्यक्ति अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है जो अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ना चाहता है। आप उसकी यह स्वतन्त्रता छीन लेंगे तो वह आपके नक़्शे

पर नहीं बढ़ेगा बल्कि विद्रोह करेगा या मुरझाकर रह जायेगा।

साम्यवाद की बुनियादी ग़लती यह है कि वह आर्थिक समस्या को केन्द्रीय समस्या क़रार देकर पूरे मानव जीवन को उसके गिर्द घुमा देता है। जीवन की किसी समस्या पर भी उसकी दृष्टि विशुद्ध अन्वेषणात्मक ही नहीं है बल्कि सारी समस्याओं को वह एक गहरे आर्थिक पक्षपात की दृष्टि से देखता है। अभौतिक विषय, नीतिशास्त्र, इतिहास, समाज शास्त्र सारांश यह कि हर चीज़ उसके आर्थिक दृष्टिकोण से ग्रस्त और प्रभावित है और इस एकरुखेपन के कारण जीवन का पूरा संतुलन बिगड़ जाता है।।

## फॉसीवादी हल

अतः वास्तव में साम्यवादी दृष्टिकोण मनुष्य की आर्थिक समस्या का कोई सही स्वाभाविक हल नहीं है बल्कि एक अस्वाभाविक और कृत्रिम हल है। इसके मुक़ाबले में दूसरा हल फॉसीवाद और राष्ट्रीय समाजवाद ने पेश किया है। और वह यह है कि आर्थिक साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार तो बाक़ी रहे मगर सामाजिक हित के लिए इस अधिकार को राज्य के कड़े नियन्त्रण में रखा जाय। किन्तु व्यवहारतः इसके नतीजे भी साम्यवादी दृष्टिकोण के परिणामों से कुछ अधिक भिन्न दिखायी नहीं देते। साम्यवाद की तरह यह दृष्टिकोण भी व्यक्ति को समष्टि में लुप्त कर देता है और उसके व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास का कोई अवसर बाक़ी नहीं छोड़ता। इसके अतिरिक्त जो सरकार इस व्यक्तिगत अधिकार को नियन्त्रण में रखती है, वह उतनी ही क्रूर और निरंकुश होती है जितनी साम्यवादी सरकार। एक बड़े देश के सभी उद्योगों को अपने नियन्त्रण में रखने और अपने दिये हुए नक़्शे पर काम करने के लिए मजबूर करने के लिए एक बड़ी ज़बर्दस्त

प्रभावकारी शक्ति की ज़रूरत होती है और जिस सरकार के हाथों में ऐसी प्रभावशाली शक्ति हो, उसके हाथ में मुल्क की आबादी का मजबूर और निरुपाय हो जाना और शासकों का गुलाम बनकर रह जाना अवश्यंभावी है।

## इस्लामी हल

अब मैं यह बताऊँगा कि इस्लाम किस तरह इस समस्या को हल करता है। इस्लाम ने जीवन की सभी समस्याओं में इस नियम को सामने रखा है कि ज़िन्दगी के जो सिद्धांत स्वाभाविक और प्राकृतिक हैं, उनको बाक़ी रखा जाय और जहां वह प्राकृतिक मार्ग से विचलित हुआ है, वहीं से उसको मोड़कर प्राकृतिक मार्ग पर लगा दिया जाय। दूसरा महत्वपूर्ण नियम जिस पर उसके सभी सुधारात्मक कार्य निर्भर करते हैं, वह यह हैं कि समाज के तमाम क्षेत्रों में केवल कुछ ऊपरी ज़ाब्ते लागू करने पर बस न किया जाय, बल्कि सबसे अधिक ज़ोर नैतिक और मानसिक सुधार पर दिया जाय ताकि मानव मन में पैदा होने वाली ख़राबी की जड़ कट जाय। तीसरा मौलिक नियम, जिसकी झलक आपको सम्पूर्ण इस्लामी जीवन प्रणाली में मिलेगी, यह है कि शासन के बल और क़ानून के ज़ोर से सिर्फ़ वही काम लिया जाय, जहां इसके बिना काम न चल सके। इन तीनों नियमों को दृष्टि में रखते हुए इस्लाम ज़िन्दगी के आर्थिक विभाग में उन सभी अस्वाभाविक सिद्धांतों को अधिक से अधिक नैतिक सुधार और कम से कम प्रशासनिक हस्तक्षेप के ज़रिये मिटाता है, जो शैतान के प्रभाव से इंसान ने अपनाये हैं। यह बात कि इंसान अपनी जीविका के लिए प्रयास करने में स्वतन्त्र हो, यह बात कि इंसान अपने श्रम से जो कुछ प्राप्त करे वह उसकी मिल्कियत स्वीकार की जाय और यह कि इंसानों के बीच उनकी योग्यताओं और उनकी परिस्थितियों के लिहाज़ से अन्तर हो इन सब

चीज़ों को इस्लाम उसी हद तक स्वीकार करता है, जिस हद तक यह प्रकृति के अनुकूल पड़ती हैं। फिर वह इन पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाता हैं जिनकी वजह से यह न तो प्राकृतिक सीमा से आगे बढ़ सके और न अन्याय और बेइंसाफी का कारण बने।

सबसे पहले धन कमाने के सवाल को लीजिए। इस्लाम ने मनुष्य के इस हक़ को स्वीकार किया है कि ईश्वर की धरती में वह अपनी रुचि और क्षमता और योग्यता के अनुसार स्वयं अपनी आजीविका तलाश करे लेकिन वह उसको यह अधिकार नहीं देता कि वह अपनी रोज़ी प्राप्त करने के लिए नैतिकता को ख़राब करने वाले या सभ्यता की व्यवस्था को बिगाड़ने वाले साधन अपनाये। वह धन कमाने के साधनों में हराम (अवैध) और हलाल (वैध) का अन्तर निर्धारित करता है और अत्यन्त विस्तार के साथ चुन-चुनकर एक-एक हानिकारक तरीक़े को हराम कर देता है। उसके क़ानून में शराब और दूसरे मादक पदार्थ न केवल अपनी जगह हराम हैं बल्कि उनका बनाना, बेचना, ख़रीदना और रखना सब हराम हैं। वह व्यभिचार, रागरंग और इसी तरह के दूसरे साधनों को भी धन की कमाई का वैध साधन नहीं मानता। वह ऐसे सभी साधनों को भी अवैध ठहराता है, जिनमें एक व्यक्ति का लाभ दूसरे लोगों की या समाज की हानि पर निर्भर करता हो। घूस, चोरी, जुआ और सट्टा, धोखा और फ़रेब के कारोबार, जमाख़ोरी अर्थात ज़रूरत के सामानों को इसलिए रोके रखना कि क़ीमतें बढ़ जायें, उत्पादन के साधनों को एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार ठहराना कि दूसरों के लिए प्रयास क्षेत्र तंग होकर रह जाय-इन सब तरीक़ों को उसने हराम ठहराया है। इसके अतिरिक्त कारोबार की ऐसी सभी शक्लों को उसने काट-छांटकर अवैध घोषित ठहरा दिया है जो अपनी आकार-प्रकार की दृष्टि से विवाद पैदा करने वाली हो या जिनमें दोनों फ़रीक़ के बीच अधिकार निश्चित न हों। अगर आप इस्लाम के इस व्यापारिक

क़ानून का विस्तृत रूप से अध्ययन करें तो आपको मालूम होगा कि आज जिन तरीक़ों से लोग करोड़पति बनते हैं, उनमें से अधिकतर वे तरीक़े हैं, जिन पर इस्लाम ने अत्यन्त कड़े क़ानूनी प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। वह धन कमाने के जिन साधनों को वैध ठहरता है, उनकी सीमा में सीमित रहकर काम किया जाय तो लोगों के लिए अपार धन समेटे चले जाने की बहुत कम संभावना शेष रहती है।

अब देखिए, इंसान जायज़ तरीक़े से जो कुछ प्राप्त करे, उसे इस्लाम उस व्यक्ति की मिल्कियत क़रार देता है, किन्तु उसके उपभोग में उसे बिलकुल आज़ाद नहीं छोड़ता बल्कि उस पर भी कई एक तरीक़ों से पाबंदियां लगाता है। विदित है कि इस कमाई हुई दौलत के इस्तेमाल की तीन सूरतें ही संभव हैं: या उसको ख़र्च कर दिया जाय या उसे लाभदायक कामों पर लगाया जाय या उसे जमा किया जाय। इनमें से एक-एक पर इस्लाम ने जो पाबंदियां लगायी हैं, उन्हें संक्षेप में यहां बयान करता हूँ।

ख़र्च करने के जितने तरीक़े नैतिकता को हानि पहुंचाते हैं या जिनसे समाज को हानि पहुंचती है वे सब वर्जित हैं। आप जुए में अपनी दौलत नहीं उड़ा सकते, आप शराब नहीं पी सकते, आप व्यभिचार नहीं कर सकते, आप गाने-बजाने, नाच-रंग और विलासिता के दूसरे तरीक़ों में अपना रुपया नहीं बहा सकते। आप रेशमी वस्त्र नहीं पहन सकते[1], आप सोने और जवाहरात के ज़ेवरों का इस्तेमाल नहीं कर सकते[2], और आप तस्वीरों से अपनी दीवारों को नहीं सजा सकते, सारांश यह कि इस्लाम ने उन सभी दरवाज़ों को बन्द किर दिया, जिनसे इंसान के धन का अधिकतम भाग उसकी अपनी विलासिता पर ख़र्च हो जाता है। वह ख़र्च की जिन-जिन सूरतों

(१) इस्लाम स्त्रियों को रेशमी वस्त्र पहनने की इजाज़त देता है। सिर्फ़ पुरुषों पर यह प्रतिबन्ध है।

(२) सोने और जवाहरात के ज़ेवर स्त्रियां पहन सकती हैं, पुरुष नहीं।

को जायज़ रखता है, वे इस किस्म की हैं कि आदमी बस एक औसत दर्जे की शिष्ट और पवित्र ज़िन्दगी बसर करे और उससे अधिक अगर कुछ बचता हो तो उसे ख़र्च करने का रास्ता उसने यह सुझाया है कि उसे नेकी और भलाई के कामों में, जनहित में और उन लोगों के सहायता कार्य में ख़र्च किया जाय जो आर्थिक धन में से अपनी ज़रूरतों के अनुसार हिस्सा पाने से वंचित रह गये हैं। इस्लाम की नज़र में सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि आदमी जो कुछ कमाये, उसे अपनी जायज़ और उचित ज़रूरतों पर ख़र्च करे और फिर जो बच रहे, उसे दूसरों को दे दे ताकि वे अपनी ज़रूरतों पर ख़र्च करें। इस गुण को इस्लाम ने उच्चतम स्तर की नैतिकता में सम्मिलित किया है और एक आदर्श के रूप में इसको इतने ज़ोर से पेश किया है कि जब कभी समाज में इस्लामी नैतिकता का बोलबाला होगा, सामाजिक जीवन में वे लोग अधिक आदर की दृष्टि से देखे जायेंगे जो कमायें और ख़र्च कर दें और उन लोगों को अच्छी दृष्टि से न देखा जायेगा जो धन को समेट-समेटकर रखने की कोशिश करें या कमाई हुई दौलत के बचे हुए हिस्से को फिर कमाने के काम में लगाना शुरू कर दें।

फिर भी विशुद्ध नैतिक शिक्षा के द्वारा और समाज के नैतिक प्रभाव और दबाव से अत्यधिक लोभ और लोलुपता रखने वाले लोगों की कमज़ोरियों का पूरे तौर पर उन्मूलन नहीं किया जा सकता। इसके बावजूद फिर भी बहुत से ऐसे लोग बाक़ी रहेंगे जो अपनी ज़रूरतों से अधिक कमाई हुई दौलत को फिर और ज़्यादा दौलत कमाने में लगाना चाहेंगे। इसलिए इस्लाम ने उसके इस्तेमाल के तरीक़ों पर कुछ क़ानूनी पाबंदियां लगा दी हैं। इस बची हुई दौलत के इस्तेमाल का यह तरीक़ा कि उसे सूद पर चलाया जाय, इस्लामी क़ानून में पूर्णतः हराम है। अगर आप किसी को अपना माल क़र्ज़ पर देते हैं तो चाहे उसने वह क़र्ज़ अपनी ज़रूरतों पर ख़र्च करने के लिए

लिया हो या जीविका के साधन पैदा करने के लिए, प्रत्येक दशा में आप उससे केवल अपना मूलधन ही वापस लेने के हक़दार हैं। इस तरह इस्लाम ज़ुल्म पर आधारित पूंजीवाद की कमर तोड़ देता है और उस सबसे बड़े हथियार को कुन्द कर देता है, जिसके द्वारा पूंजीपति केवल अपनी पूंजी के बल पर आसपास के आर्थिक धन को समेटता चला जाता है। रहा बचे धन के इस्तेमाल का यह तरीक़ा कि उसे व्यक्ति चाहे अपने व्यापार, उद्योग या दूसरे कारोबार में लगाये या दूसरों के साथ लाभ-हानि में शामिल होकर पूंजी जुटाये तो इस्लाम उसे जायज़ क़रार देता है और इससे जो आवश्यकता से अधिक धन लोगों के पास सिमट जाता है, उसका इलाज वह दूसरे तरीक़े से करता है।

इस्लाम ने ज़रूरत से अधिक धन जमा करने को हराम ठहराया है जैसा कि अभी मैं कह चुका हूँ। उसकी अपेक्षा यह है कि जो कुछ माल आपके पास है या तो उसे अपनी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदने पर ख़र्च करो या दूसरों को दो कि वह अपनी ज़रूरत की चीज़ें खरीदे और इस तरह पूरी दौलत बराबर गर्दिश में रहे। लेकिन आप अगर ऐसा नहीं करते और जमा करने की ही ज़िद करते हैं तो आपकी उस जमा की हुई दौलत में से क़ानून के अनुसार ढाई प्रतिशत रक़म प्रतिवर्ष निकलवा ली जायेगी और उसे उन लोगों की सहायता में ख़र्च किया जायेगा जो आर्थिक संघर्ष में हिस्सा लेने के योग्य नहीं हैं या संघर्ष और प्रयास के बावजूद जो अपना पूरा हिस्सा पाने से वंचित रह जाते हैं। इसी चीज़ का नाम ज़कात है और इसके प्रबन्ध की जो सूरत इस्लाम ने पेश की है वह यह है उसे समाज के संयुक्त कोष में जमा किया जाय और कोष उन सभी लोगों की ज़रूरतों का ज़िम्मेदार बन जाये, जिन्हें मदद की ज़रूरत है। यह समाज के लिए बीमा का बेहतरीन तरीक़ा है और उन सभी ख़राबियों का उन्मूलन हो जाता है जो सामूहिक मदद और सहयोग का समुचित प्रबन्ध न होने से पैदा होती हैं। पूंजीवादी

व्यवस्था में जो चीज़ लोगों को दौलत जमा करने और उसे लाभदायक कामों में लगाने पर मजबूर करती है और जिसकी वजह से जीवन बीमा आदि की ज़रूरत पेश आती है, वह यह है कि हर व्यक्ति की ज़िन्दगी इस व्यवस्था में अपने साधनों ही पर निर्भर करती है। वह बूढ़ा हो जाय और कुछ बचाकर न रखा हो तो भूखा मर जाय। बाल-बच्चों के लिए कुछ छोड़े बग़ैर अगर कोई व्यक्ति मर जाये तो वे दर-दर भटकें और भीख का टुकड़ा तक न पा सकें। बीमार हो जाय और कुछ बचा-बचाया न रखा हो तो इलाज तक न करा सके। घर जल जाये या कारोबार में नुक़सान हो या कोई और आपदा आ जाय तो किसी तरफ़ से उसको सहायता मिलने की उम्मीद नहीं। इसी तरह पूंजीवादी व्यवस्था में जो चीज़ श्रमिक वर्ग के लोगों को पूंजीपतियों का ज़रख़रीद गुलाम बन जाने और उनकी शर्तों पर काम करने के लिए मजबूर कर देती है, वह भी यही है कि जो कुछ उसकी मेहनत का बदला पूंजीपति देता है, उसे ग़रीब आदमी यदि न ले तो भूखा रहे और नंगा फिरे। पूंजीपति को बख़्शीश से मुंह मोड़कर उसे दो वक़्त की रोटी मिलनी मुश्किल है। फिर यह बड़ी लानत जो आज पूंजीवादी व्यवस्था के कारण संसार को घेरे हुए है कि एक तरफ़ लाखों करोड़ों इंसान मुहताज मौजूद हैं और दूसरी तरफ़ ज़मीन की पैदावार और कारख़ानों में बने सामानों के ढेर लगे हुए हैं, मगर ख़रीदे नहीं जा सकते यहां तक कि लाखों मन गेहूं समुद्र में फेंका जाता है और भूखे इंसानों के पेट तक नहीं पहुंचता। इसका कारण भी यही है कि मुहताज इंसानों तक जीवन सामग्री पहुंचाने का कोई प्रबन्ध नहीं है। इन सब के अन्दर क्रय शक्ति पैदा कर दी जाय और वे अपनी ज़रूरत और इच्छा के मुताबिक़ वस्तुएँ ख़रीदने के योग्य हो जायें तो व्यापार, उद्योग और कृषि, सारांश यह कि हर उद्योग फलता-फूलता जाय। इस्लाम ज़कात और बैतुलमाल (सरकारी ख़ज़ाना) के द्वारा इन सारी

ख़राबियों को दूर करता है। बैतुलमाल हर समय आपके पीछे एक मददगार की हैसियत से मौजूद है। आपको कल की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। जब आपको ज़रूरत हो बैतुलमाल जायें और अपना हक़ ले आयें फिर बैंक डिपाज़िट और जीवन बीमा पालिसी की क्या ज़रूरत? आप अपने बाल-बच्चों को छोड़कर इत्मिनान के साथ दुनिया से विदा हो सकते हैं। आपके पीछे सरकारी ख़ज़ाना उनका ज़िम्मेदार है। बीमारी, बुढ़ापा और प्राकृतिक आपदायें चाहे वे आसमानी हों या ज़मीनी, हर परिस्थिति में बैतुलमाल आपका स्थाई सहायक है, जिसकी तरफ़ रुजू कर सकते हैं। पूंजीपति अपनी शर्तों पर काम करवाने के लिए आपको मजबूर नहीं कर सकता। बैतुलमाल की मौजूदगी में आपके लिए भूख, नग्नता और निर्धनता का कोई ख़तरा नहीं। फिर यह बैतुलमाल धन कमाने में पूर्णतः असमर्थ या कम पैदा करने वाले लोगों को ज़रूरत के सामान ख़रीदने में सक्षम बना देता है। इस प्रकार माल के उत्पादन और उसकी खपत में निरंतर संतुलन बना रहता है। और इसकी आवश्यकता शेष नहीं रहती कि आप अपने दीवालियेपन को दुनिया भर के सिर पर चिपकाने के लिए फिरें और अन्ततोगत्वा दूसरे ग्रहों तक पहुँचने की ज़रूरत पड़े। ज़कात के अतिरिक्त दूसरा उपाय जो एक जगह सिमटी हुई दौलत को फैलाने के लिए इस्लाम ने अपनाया है, वह विरासत का क़ानून है। इस्लाम के सिवा अन्य क़ानूनों का झुकाव इस तरफ़ है कि जो दौलत एक व्यक्ति ने समेटी है, वह उसके मरने के बाद भी सिमटी रहे। किन्तु इस्लाम इसके विपरीत यह तरीक़ा अपनाता है कि जिस दौलत को एक व्यक्ति समेट समेटकर क़ैद करता रहा है, उसके मरते ही वह फैला दी जाय। इस्लामी क़ानून में बेटे-बेटियां, मां-बाप, भाई-बहन और पत्नी सब एक व्यक्ति के वारिस हैं और एक नियम के अनुसार सबमें पैतृक सम्पत्ति बंटनी ज़रूरी है। क़रीबी रिश्तेदार मौजूद न हों तो दूर के रिश्तेदार तलाश किये जायेंगे और उनमें यह

दौलत फैलायी जायेगी। कोई रिश्तेदार ही न हो, तब भी व्यक्ति को किसी को अपना मुंह बोला बेटा मानने का हक़ नहीं है। इस स्थिति में पूरा समाज उसका वारिस है। उसकी समेटी हुई सारी दौलत बैतुलमाल में डाल दी जायेगी। इस तरह चाहे कोई व्यक्ति करोड़ों या अरबों की दौलत जमा करे, उसके मरने के बाद दो-तीन पीढ़ियों के अन्दर वह सब की सब छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटकर फैल जायेगी और दौलत का हर सिमटाव क्रमशः फैलाव में बदलकर रहेगा।

यह अर्थव्यवस्था, जिसका मैंने अत्यन्त संक्षिप्त नक़्शा पेश किया है, उस पर विचार कीजिए। क्या यह निजी मिल्कियत की उन सभी हानियों को दूर नहीं कर देता, जो शैतान की ग़लत शिक्षा के कारण पैदा होते हैं। फिर आख़िर इसकी क्या आवश्यकता है कि हम साम्यवादी दृष्टिकोण या फॉसीवाद और राष्ट्रीय समाजवाद के दृष्टिकोणों को अपना कर आर्थिक व्यवस्था के वे कृत्रिम तरीक़े इस्तेमाल करें, जो एक ख़राबी को दूर नहीं करते बल्कि उसकी जगह दूसरी ख़राबी पैदा कर देते हैं। यहां मैंने इस्लाम की सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था का उल्लेख नहीं किया है। धरती का प्रबन्ध और औद्योगिक विवादों के निपटारे तथा उद्योग-धन्धों के लिए पूंजी जुटाने की जो सूरतें इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार अपनायी जा सकती हैं और जिनके लिए इस्लामी क़ानून में पूरी गुंजाइश भी रखी गयी है, उन्हें इस संक्षिप्त लेख में पेश करना मुश्किल है। फिर इस्लाम ने जिस तरह आयात-निर्यात के करों और देश के अन्दर व्यापारिक माल को लाने और ले जाने पर चुंगी की पाबंदियों को हटाकर ज़रूरत के सामानों के स्वतंत्र विनियम का रास्ता खोला है, उसका उल्लेख मैं नहीं कर सका हूँ। इन सबसे बढ़कर मुझे यह बयान करने का मौक़ा भी नहीं मिला है कि प्रशासनिक व्यवस्था, सिविल सेवा और सेना के ख़र्चों को संभावित सीमा तक घटाकर और अदालत के स्टाम्प ड्यूटी को

पूरी तरह हटाकर इस्लाम ने समाज पर से जिस भारी आर्थिक बोझ को हल्का किया है और करों को प्रशासन की सीमा से बढ़े हुए ख़र्चों में खपा देने के ब़जाय समाज की सुख-सुविधा और भलाई पर ख़र्च होने का जो अवसर प्रदान किया है, उनकी बदौलत इस्लाम की अर्थव्यवस्था इंसानों के लिए कितनी बड़ी रहमत बन जाती है। अगर पक्षपात छोड़ दिया जाय और बाप-दादा से जो अज्ञानपूर्ण तंगनज़री विरासत में मिली है या ग़ैर इस्लामी हुकूमतों के दुनिया पर अपना प्रभुत्व जमाने से जो रोब दिमाग़ों पर छा गया है, उसे दूर करके स्वतन्त्र अन्वेषणात्मक दृष्टि से इस व्यवस्था का अध्ययन किया जाय तो मुझे आशा है कि एक भी न्यायप्रिय व्यक्ति ऐसा न मिलेगा जो इंसान के आर्थिक हित के लिए इस व्यवस्था को सबसे अधिक उपयोगी, सही और बुद्धिसंगत स्वीकार न करे। लेकिन अगर किसी को यह ग़लतफ़हमी हो कि इस्लाम के सम्पूर्ण धारणात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में से सिर्फ़ उसकी आर्थिक प्रणाली को लेकर कामयाबी के साथ चलाया जा सकता है तो मैं उससे निवेदन करूंगा कि कृपया वे इस ग़लतफ़हमी को दिल से निकाल दे। इस आर्थिक व्यवस्था का गहरा सम्बन्ध इस्लाम के राजनीतिक, न्यायिक, क़ानूनी, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था के साथ है। फिर इन सब चीज़ों की बुनियाद इस्लाम की नैतिक व्यवस्था पर क़ायम है और वह नैतिक व्यवस्था भी अपने आप पर क़ायम नहीं है बल्कि वह पूर्ण रूप से इस बात पर निर्भर है कि आप एक सर्वशक्तिशाली और सर्वत्र ईश्वर पर ईमान लायें और अपने आपको उसके सामने उत्तरदायी समझें। मौत के बाद पारलौकिक जीवन को मानें और यह भी स्वीकार करें कि परलोक में खुदा की अदालत के सामने जीवन के तमाम कर्मों को जांचा-परखा जायेगा और जांच के अनुसार इनाम या सज़ा मिलेगी। और यह भी मानें कि खुदा की तरफ़ से हज़रत मुहम्मद

(सल्ल०) ने जो नैतिक नियम और अन्य कानून आप तक पहुँचाया है, जिसका एक हिस्सा आर्थिक व्यवस्था भी है, वह पूर्णतः ईश्वरीय आदेश पर आधारित है। अगर इस धारणा, नैतिक व्यवस्था और इस सम्पूर्ण जीवन प्रणाली को आप ज्यों का त्यों न लेंगे तो केवल इस्लामी अर्थव्यवस्था एक दिन भी अपनी सही रूह से न चल सकेगी और न उससे आप कोई उल्लेखनीय लाभ उठा संकेंगे।

# हमारी हिन्दी पुस्तकें

**अनूदित कुरआन मजीद** — ₹

(रूपान्तरकार : मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ)

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी के किये हुए सुप्रसिद्ध सरस उर्दू अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर। कुरआन के अनुवाद के साथ संक्षिप्त व्याख्या भी सम्मिलित है।

**कुरआन कैसे पढ़ें** — हदया

इसमें क़ुरआन की कुछ प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की गयी है, जिनका जानना क़ुरआन समझने के लिये ज़रूरी है।

**क़ुरआन की हैसियत** — लेखक : हमूदा अब्दुल आति ०।

**क़ुरआन और पैग़म्बर** — लेखक : मौलाना मौदूदी हदिया

क़ुरआन में पैग़म्बरे इस्लाम की क्या हैसियत और ज़िम्मेदारियां बयान हुई हैं ? इसका उत्तर इस पुस्तक में मिलेगा।

**इस्लाम आप से क्या चाहता है ?** —

लेखक मौलाना सैयद हामिद अली अनुवाद : नसीम ग़ाज़ी

अपने विषय पर एक सन्तोषजनक पुस्तक।

**वेद और क़ुरआन** — संपादक फ़ारूक़ ख़ाँ।

विभिन्न पहलुओं से विचारात्मक लेखों का संग्रह

**हदीस सौरभ** — संकलनकर्त्ता : मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

हज़रत मुहम्मद सल्ल० की हदीसों (वचनों) का एक प्रमुख संग्रह। हिन्दी में अपने ढंग की एकमात्र पुस्तक।


MARKAZI MAKTABA ISLAMI PUBLISHER
NEW DELHI
مرکزی مکتبہ اسلامی پبلشرز
PN-H110